GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

सांस्कृतिक उत्थान की नींव बाल उत्थान

डॉ. कुसुमबा सोठा

रिसर्च गाईड

हिना वी. मोरी

रिसर्च स्कोलर
लकुलीश योग युनिवर्सिटी,
हायर स्टडी और रिसर्च
अकेडमी, अहमदाबाद,
गुजरात - भारत

सारांश

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है । आज का बालक कल का विश्व है । बालको का निर्माण उनकी परिपक्व आयु उपलब्ध होने पर नहीं, बाल्यकाल में ही संभव है । शरीर और मनका परस्पर सम्बन्ध है । शरीर का स्वास्थ्य, मन की स्वस्थता के बिना अधूरा है । बाल्यकाल में ही संस्कारों का आरोपण किया जाता है । शिक्षा एवं विद्या के साथ संस्कार भी देना चाहीए । तो ही हम उनके समग्र विकास को गतिशील बना सकते है । सद्गुणो की सम्यति ही बालकों का सही निर्माण कर सकती है । बच्चां कुछ संस्कारो को पूर्व जन्म के संचित निधिके रूप में साथ लाता है । फिर भी उसका विकास बहुत अधिक माता-पिता, शिक्षक, गुरु एवं वातावरण पर निर्भर करता है । उपेक्षा और उदासीनता के द्वारा जिस प्रकार बच्चों को क्रूर एवं जिद्दी बनाया जाता है । उसी प्रकार प्रयत्न और भावनापूर्वक उन्हे तेजस्वी और मनस्वी भी बनाया जा सकता है । प्राचिनकाल में यही व्यवस्था थी । प्यार के साथ तप, स्वाध्याय, योगाभ्यास की व्यवस्था बनी रहती थी । और बच्चोंका एक समग्र व्यक्तित्व का विकास होता था । बालकों के निर्माण में माता का अंश ज्यादा होता है । पिता तो बिन्दुं मात्र का सहयोगी होता है । माता नौ माह तक वह अपने गर्भ में अपने जीवन तत्त्व से पालती है । बादमें स्तनपान द्वारा अनेक वर्षो तक बालक की नींव मजबूत बनाती है । भविष्य का सारा स्वरूप गर्भावस्था और किशोरावस्था तक दिए गए शिक्षण के अनुसार होता है । सांस्कृतिक उत्थान के लीए "शिशु अवस्था वस्तुतः कोरे कागज के समान है ।" इस कोरे कागज पर चाहे काली स्याही से लिख दें अथवा रंगीन कलाकृति ठाल दें । उस रूप में बालक ढल जाता है ।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (1998)

प्रस्तावना

किसी भी समाज और देश के लिए बच्चां भविष्य होता है । बाल-जीवन की उत्थान की नींव जितनी अच्छि होगी देश का भविष्य भी उतना ही अच्छा होगा । गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ वार्ताकार गिजुभाई बधेका ने बालकों को देव स्वरूप मानकर "बालदेवो भव" का मंत्र दिया है । "बालक ही देवता है । जिस प्रकार देवता को मानाने के लिए यत्न कीये जाते है, ऊसी प्रकार बालक को भी यत्नपूर्वक संभालने और सन्मान देने से उनके भीतर अव्यक्त ईश्वरीय शक्ति को पहचान सकते है ।"

(गिजुभाई बधेका 2012)

बालक को सर्वांगी विकास के लिए केवल सक्षरो विषय याने के पाठ्यपुस्तक में दिया हुआ विषयवस्तु ही पर्याप्य

https://www.gapbhasha.org/

GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

नहीं है । कई अन्य क्षेत्र है जो दैनिक आधार पर मानव जीवन को छूते है जैसे की

(1) पात्रों का महान चरित्र वाचन

(2) संस्कार संबंधी गतिविधियाँ

(3) स्वच्छता और स्वस्थता (कल्याण) प्रेरक गतिविधियाँ

ऐसी सभी संस्कार सिंचाई गतिविधियों के माध्यम से बच्चों पर अच्छा प्रभाव डालती है । बचपन में ही बच्चों का विकास क्षेत्र बढ़ जाता है । बचपन में जो संस्कार होते है, वे बड़े होकर प्रकट होते है ।

सांस्कृतिक उत्थान की नींव बाल उत्थान

चरित्र निर्माण से ही, मनुष्य जीवन का चरित्र शुद्ध होता है । कुसंस्कारो द्वारा मानव मस्तिष्क में घोर क्रान्ति उत्पन्न कर देता है । और यह उतार-चढ़ाव बार-बार बना रहेता है । इसलीए भारतीय धर्मका निरूपण करने वाले आचार्यो ने यह व्यवस्था पहले बना दी कि, लोगों के चरित्र अनेक शैशवकाल में ही दृढ़ बन जाएँ । आयु बठने के साथ ऊनमें चारित्रिक प्रौढता आती जाती है । ऐसे मनुष्य आगे बठकर महान, तेजस्वी, मनस्वी और आत्मबल, सम्पन्न होते है । जैसे, स्वामी विवेकानंद महाराणा प्रताप, ध्रुव, महावीर आदि थे ।

जब तक यहाँ हमारे देशमें ये परंपरा यथावत् चलती रही, तब तक यहाँ सुख, शान्ति और समृद्धि बनी रहेगी । आज के समय में बालको को इतना उपेक्षित देखते है, उससे विचारवान को धक्का लगता है । बच्चों को संस्कारवान बनाने का अभ्यास ऊनके गर्भमें आने से हीं प्रारंभ करना चाहिए । माता-पिता की मनोदशा का प्रभाव, बालको की मनोदशा पर प्रभाव पडता है । माता का रहन-सहन का सूक्ष्म प्रभाव बच्चों की आत्मा पर पडता है । स्वामी विवेकानंदजी की माता भुवनेश्वरी देवी बुद्धिमान और अत्यंत तेजस्वी थे । एक जाजरमान (प्रभावशाली) व्यक्तित्व था। वह नित्य रामायण और महाभारत पढ़ती थी । वहीं संस्कार की छाप स्वामीजी के चरित्र में देखने को मिलती है । वही संस्कारो का पान स्वामीजीने कीया । ऐसे सुयोग्य माता-पिता द्वारा ही अच्छे और संस्कारी संतान का जन्म होता है। “दार्शनिक सुकरात के पास एक स्त्री गई । उसने पूछा गुरुदेव ! अपने बच्चे की शिक्षा में कबसे प्रारम्भ करूँ ?”

“बच्चे की उम्र क्या है ?” सुकरात ने पूछा !

“चार साल” ! स्त्रीने सरलता से उत्तर दिया !

“तब तो आप चार वर्ष नौ माह, बच्चों के शिक्षा देने में पीछे रह गई ।” “सुकरात ने समजाया ! माता-पिता के आचार-विचार आदि से बच्चे के संस्कार बनने प्रारम्भ हो जाते है । गर्भावस्था से ही बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ कर देनी चाहिए ।”

((श्री रामशर्मा आचार्य वाङ्मय) हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण)

भारतीय संस्कृति में यह पद्धति क्रमिक और वैज्ञानिक थी । यहीं कारण था हमारे यहां ध्रुव, प्रहलाद, भरत, अभिमन्यु जैसे प्रतिभाशाली बच्चें जन्म लिया करते थे । सांस्कृतिक उत्थान की नींव बालकों के उत्थान से प्रारम्भ होनी चाहिए । जन्म लेने के पश्चात् किशोरावस्था में आने तक बच्चा अधिकांश माता के ही संरक्षण में रहता है । उस समय माता का प्रभाव बालक पर होता है । इसलीए यह समय माता की सबसे बड़ी जिम्मेवारी होती है ।

पाँच वर्ष की अवस्था आ जाने पर बालक को ज्ञान पिपासा बठने लगती है । अभी तक जिन वस्तुओं को मात्र खेल और तोड़-फोड़ की जरूरत समझता था । अब उनके प्रति जिज्ञासा भाव बठने लगता है । इस समय बालकोको सुंदर-सुंदर चित्रोका अभ्यास करवाना चाहिए । जिसमें महापुरुष की छवीं हो । महापुरुषो की जीवनियाँ सरल व सुबोध ठंगसे सुनानी चाहीए । शांत, करूण और मनोरंजक लोरियो से बालकोंमें सात्विक संस्कार का आविर्भाव होता है । इस अवस्था में बच्चों का मस्तिष्क किसी भी दिशा मे लगा सकता है ।

विश्वप्रसिद्ध मनोविज्ञानी **वोट्सन** के अनुसार “अभिप्रेरक का **सिद्धान्त**” व्यक्ति के लीए जीवन के प्रथम पाँच वर्ष बड़े ही महत्वपूर्ण समजे जाते है । **श्री रामशर्मा आचार्यजी ने सुसंस्कारिता के चार आधारों को प्रमुख माना**

https://www.gapbhasha.org/

है ।

(1) समजदारी

(2) ईमानदारी

(3) जिम्मेदारी

(4) बहादुरी

जायानीश कृति 'तोतोचान' वास्तव में एक अच्छि कृति है । जो बच्चों की शिक्षा प्रणाली को उजागर करती है । इस कृति का एक वाक्यहै । 'तुम सब में एक अच्छा बच्चां है .....!' (**ततोचान**-1981) **'काबायाशि'** - इस कृति के आचार्य थे । उन्हों ने अपने विद्यालय में विद्यार्थी यों के व्यक्तिगत, संज्ञानात्मक, एवं सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के दृष्टिकोण के साथ-साथ उनके समग्र विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया था । बाल सुलभ कौतुहल, जिज्ञासाएँ समजें, बच्चो को सुने, बच्चों के महत्व को अनिवार्य रूपसे समजने की जरूरत होती है। इसलीए सांस्कृतिक उत्थान के लीए आत्म-निरीक्षण द्वारा बच्चों का जीवन उन्नत बनाये, आजकी सबसे बडी आवश्यकता यह है कि हमारे बालको का चारित्रिक विकास हो । नैतिक उत्थान होना चाहिए । अस्तुं

निष्कर्ष

उपरोक्त विषय का निष्कर्ष नीचे कुछ इस तरह से है ।

- यह एक सुनिश्चित् तथ्य है कि राष्ट्र का आधार बालक है । उनका निर्माण उनकी परिपक्व आयु उपलब्ध होने पर नही, बाल्यकाल में ही संभव है ।
- शिक्षा और ज्ञान की अवधारणा को घर के बच्चों की जटिलताओं एवं अनेक महत्व को अनिवार्य रूप से समजने की जरूरत होती है ।
- शिक्षा मनुष्य के जीवन को 'सत्यवादी' और 'कर्मशील' बनाती है । सामाजिक प्रगति और राष्ट्रीय उत्थान के लीए यह आवश्यक बात है ।
- सुसंतति-निर्माण का शुभारंभ चरित्रवान माता-पिता के द्वारा होता है । वही सुसंस्कृत सन्तान बनाते है।
- बालको को 'शिक्षा' के साथ 'दीक्षा' के संस्कारो की आवश्यकता है ।
- आत्मविश्वास, स्वावलम्बन, सन्तुलन की शिक्षा की आवश्यकता है ।
- भौतिक विकास के साथ-साथ भावनात्मक, नवनिर्माण व सर्वांगीण विकास पर भी समान रूप से ध्यान दिया जाना चाहीए ।

संदर्भसूचि

[1] पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, वाड्मय, 1998, हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा ।

[2] स्वामी सर्वथानंद, 2001, योगाचार्य स्वामी विवेकानंद जीवन चरित्र, श्री रामकृष्ण आश्रम, राजकोट ।

[3] तत्सुको कुरायोनागी, 1981, तोतो-चान, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ।

[4] स्वामी सर्वथानंद, 2012, नरेन से वीर संन्यासी विवेकानंद, श्री रामकृष्ण आश्रम, राजकोट ।

[5] बालवार्ता, गिजुभाई बधेका, 2012, बाल-शिक्षण, जयपुर, अंकित पब्लीकेशन ।

[6] https://www.aksharnaad.com

https://www.gapbhasha.org/